जनसत्ता

मुंहतोड़ जवाब

नए साल से ठीक पहले भारतीय सेना ने पाकिस्तानी हमले की साजिश नाकाम तो कर दी, लेकिन इससे एक बात साफ हो गई है कि पाकिस्तान अपनी हरकतों से बाज नहीं आने वाला। नए साल का मौका दोनों देशों के बीच एक अच्छी शुरुआत के लिए हो सकता था, लेकिन इस अवसर को भी उसने भारत में हमले के लिए इस्तेमाल किया। जम्मू-कश्मीर के कुपवाड़ा जिले के नौगाम सैक्टर में नियंत्रण रेखा (एलओसी) के पास रविवार आधी रात पाकिस्तान की बॉर्डर एक्शन टीम (बैट) के जवानों ने भारत की सीमा में घुसने की कोशिश की, लेकिन भारतीय सेना के जवानों ने इसे नाकाम कर दिया और बैट के दो जवानों को ढेर कर दिया। बैट के बाकी जवान भाग निकले। भारतीय क्षेत्र में घुस कर बैट की यह टीम सेना के ठिकाने पर बड़ा हमला करने की तैयारी में थी। बैट के ऐसे सुनियोजित हमले पहले भी होते रहे हैं। यह हमला पूरी तरह पाकिस्तानी सेना की मदद से ही होना था। बैट के जवानों को भारत में घुसाने के लिए पाकिस्तानी सेना ने जम कर गोलीबारी की, ताकि भारतीय सेना का ध्यान भटकाया जा सके और इसी का फायदा उठाते हुए बैट के जवान भारत में घुस जाएं। आंखों में धूल झोंकने के मकसद से बैट के जवानों ने भारतीय सेना और सीमा सुरक्षा बल की ही वर्दी पहन रखी थी, ताकि ये भारतीय सेना के जवानों के बीच घुल-मिल जाते और बड़ा हमला करने में कामयाब हो जाते।

पाकिस्तान सेना ने भारत के सीमाई इलाकों में घुसपैठ और हमलों के लिए जो विशेष दल बनाया है उसमें सेना के जवानों के अलावा प्रशिक्षित आतंकी और स्पेशल सर्विस ग्रुप के कमांडो भी शामिल हैं। इसे ही बॉर्डर एक्शन टीम नाम दिया गया है। कहने को तो यह पाकिस्तान के सीमाई इलाकों की रक्षा के लिए गठित बल है, लेकिन इसका एकमात्र मकसद और काम भारत में घुसपैठ कर बड़े हमले करना है। पिछले साल सेना, सुरक्षा बलों और पुलिस ने ढाई सौ से ज्यादा आतंकियों को मार गिराया। इनमें कई हमले बैट के थे। पाकिस्तान ने करगिल युद्ध में मुंह की खाने के बाद भारत के खिलाफ छद्म युद्ध छेड़ने के लिए बैट का इस्तेमाल तेजी से किया। बैट के जवानों ने कुछ साल पहले भारतीय जवानों को अपने इलाके में ले जाकर यातनाएं दीं, फिर हत्या कर उनके सर कलम कर दिए थे। ये घटनाएं यह बताने के लिए काफी हैं कि पाकिस्तान अपनी सीमा सुरक्षा की आड़ में किस तरह आतंकियों और सेना के जवानों को भारत पर हमलों के लिए इस्तेमाल करता है। इसके अलावा दूसरे रास्ते भी भारत में आतंकियों की घुसपैठ कराने का अभियान जारी है।

पिछले साल जुलाई में पाकिस्तान में नई सरकार आने के बाद ऐसे संकेत मिले थे कि सीमा पर कुछ शांति के आसार बनेंगे। लेकिन पाकिस्तान की ओर से ऐसे हमलों और घुसपैठ में कोई कमी नहीं आई। इमरान खान ने प्रधानमंत्री पद की शपथ लेते हुए कहा भी था कि वे भारत से अच्छे रिश्ते बनाने की दिशा में बढ़ेंगे, लेकिन उनके ये वादे खोखले ही साबित साबित हो रहे हैं। इमरान खान की सरकार पूरी तरह से सेना की मुट्ठी में है और उसी के इशारे पर चल रही है, इसलिए ऐसे हमलों को रोकना उसके वश में लगता नहीं है। भारत के खिलाफ जंग पाकिस्तानी सेना और आइएसआइ का पुराना और बड़ा एजेंडा रहा है। ऐसे में भारतीय सेना और सुरक्षा बलों के सामने एक ही विकल्प रह जाता है कि आतंकियों और घुसपैठियों का सफाया करें। पाकिस्तान को यही मुंहतोड़ जवाब होगा।

बेलगाम अपराध

उत्तर प्रदेश में अपराधियों के हौसले किस कदर बढ़े हुए हैं, इसकी खबरें अब अक्सर सामने आने लगी हैं। लेकिन देवरिया जेल में बंद राज्य के एक माफिया सरगना अतीक अहमद की दबंगई की जो खबर आई है, वह हैरान करने वाली है। पूर्व सांसद अतीक अहमद को कई आरोपों के तहत जेल में रखा गया है। लेकिन अगर वहां भी अतीक अहमद को अपनी गतिविधियां चलाने में कोई बाधा पेश नहीं आ रही है तो यह समूचे जेल-प्रशासन के साथ-साथ सरकार के रवैये पर सवालिया निशान है। खबरों के मुताबिक रियल एस्टेट कारोबारी मोहित जायसवाल ने आरोप लगाया कि उसे अगवा कर देवरिया की जेल में ले जाया गया, जहां अतीक अहमद के लोगों ने उसकी पिटाई की और जायदाद के कागजात पर हस्ताक्षर करा लिए। सवाल है कि जेल में किसी को इस तरह की हरकत करने की छूट कैसे मिल गई! यह कैसे संभव है कि बाहर से किसी को अपहरण करके जेल में ले जाया जाए, उसकी पिटाई की जाए और कागजात पर हस्ताक्षर कराया जाए और जेल की सुरक्षा में लगे अधिकारियों और दूसरे सुरक्षाकर्मियों को इसकी भनक तक नहीं हो!

हालांकि देश भर की जेलों से ऐसी खबरें आती रहती हैं कि जेलों में बंद रसूखदार कैदियों को मोबाइल, टीवी या दूसरी कई तरह की सुविधाएं मुहैया हो जाती हैं। क्या यह सब बिना जेलकर्मियों या अफसरों की मिलीभगत के संभव है? देवरिया जेल की घटना में डिप्टी जेलर सहित चार जेलकर्मियों को निलंबित करके औपचारिक कार्रवाई कर दी गई है। लेकिन क्या इस मामले की व्यापक जांच कराने और कार्रवाई करने का भरोसा दिया जाएगा क्योंकि राज्य की बाकी जेलों में भी इस तरह की लापरवाही मौजूद है? उत्तर प्रदेश में भाजपा की सरकार बनने के बाद अपराधों पर लगाम लगाने के नाम पर चलाए गए अभियान में कई अपराधियों को मुठभेड़ों में मार गिराने का दावा किया गया। हालांकि उन मुठभेड़ों पर काफी सवाल उठे थे। लेकिन अगर सरकार उसे अपनी उपलब्धि के तौर पर पेश करती है तो आखिर वे कौन-सी वजहें हैं कि जिन माफिया सरगनाओं को जेल में बंद किया गया है, उन्हें भी अपनी आपराधिक गतिविधियां चलाने की सहूलियत मिल जाती है? अगर प्रशासन के आंतरिक तंत्र में इस कदर बड़ी खामी मौजूद है तो बाहरी कार्रवाई करके अपराधों को किस हद तक रोका जा सकेगा?

उत्तर प्रदेश की मौजूदा सरकार के गठन से पहले हुए विधानसभा चुनावों में सबसे बड़ा मुद्दा लगातार बढ़ते अपराधों और अपराधियों का बेलगाम हौसला था। तब भाजपा की ओर से यह वादा किया गया था कि सत्ता में आने के बाद वह अपराधियों पर नकेल कसेगी और उनके प्रति कोई रियायत नहीं बरतेगी। लेकिन चुनावों में भाजपा को जीत मिलने और सरकार बनने के बाद से राज्य में अपराधों की जो स्थिति है, उसके मद्देनजर यह नहीं कहा जा सकता है कि हालात में कोई खास तब्दीली आई है। बल्कि अपराधों के आंकड़ों के मुताबिक कड़वी हकीकत यह है कि स्थिति और ज्यादा खराब ही हुई है। पिछले साल मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने एक सभा में कहा था कि उनके राज में अपराधियों की जगह जेल में है या फिर 'यमलोक' में। लेकिन आखिर वे क्या कारण हैं कि जिन बड़े अपराधियों को किसी तरह पकड़ा गया और उन्हें जेल में रखा गया, उस जेल से भी अपनी गतिविधियां चलाने में उन्हें कोई दिक्कत नहीं पेश आ रही है। यह किस आधार पर दावा किया जा सकता है कि सरकार की मशीनरी अपनी ड्यूटी को लेकर कोई कोताही नहीं बरत रही है या वह अपराधियों के प्रति नरम नहीं है?

कल्पमेधा

अनुभव एक रत्न है और इसे ऐसा होना भी चाहिए क्योंकि यह प्राय: अत्यधिक मूल्य में खरीदा जाता है।
-शेक्सपियर

डिजिटल लत और बढ़ता संकट

शशांक द्विवेदी

असल में युवा वर्ग सूचनाओं के बोझ से दबा जा रहा है और उसके खुद के सोचने और समझने की क्षमता लगातार कम होती जा रही है, साथ ही काम में मौलिकता का अभाव स्पष्ट रूप से दिख रहा है। मशहूर लेखक निकोलस कार ने मानव मन-मस्तिष्क पर इंटरनेट के प्रभाव विषय पर अपनी चर्चित पुस्तक 'द शैलोज' में कहा है, 'इंटरनेट हमें सनकी बनाता है, हमें तनावग्रस्त करता है, हमें उस ओर ले जाता है जहां हम इस पर ही निर्भर हो जाएं।'

सूचना तकनीक और इंटरनेट ने विकास में बड़ा योगदान दिया है। लेकिन अब इसके भारी दुष्परिणाम भी सामने आ रहे हैं, मसलन इंसान तकनीक का गुलाम बनता जा रहा है। बच्चों का बचपन इंटरनेट की गिरफ्त में आ चुका है। बाजार ने बच्चों के लिए भी इंटरनेट पर इतना कुछ दे दिया है कि वे पढ़ाई के अलावा और भी बहुत कुछ इंटरनेट पर कर रहे हैं। पिछले दिनों दिल्ली पुलिस और अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) की 'बिहेवियर एडिक्शन यूनिट' ने मिल कर एक सर्वे किया था। इसमें यह चौंकाने वाला यह तथ्य सामने आया कि स्कूलों में पढ़ने वाले हर पांच में से एक छात्र प्रोब्लेमेटिक इंटरनेट यूजर यानी 'पीआइयू' का शिकार है। इंटरनेट गेमिंग, सर्फिंग या सोशल नेटवर्किंग साइटों के दीवाने बच्चों की इंटरनेट के प्रति ऐसी लत इनकी पढ़ाई और सामाजिक जीवन को बुरी तरह प्रभावित कर रही है। सर्वे के मुताबिक सैंतीस फीसद छात्र अपने मिजाज और पढ़ाई के दबाव से ध्यान हटाने के लिए इंटरनेट का सहारा ले रहे हैं। इस सर्वे में दिल्ली के पच्चीस नामी स्कूलों के कुल 6291 छात्रों ने हिस्सा लिया था। इनमें कक्षा छह से लेकर बारहवीं तक के छात्रों को शामिल किया गया था। सर्वे छात्रों के इंटरनेट इस्तेमाल करने की आदत को लेकर था।

पिछले दिनों फ्रांस की संसद ने एक कानून बना कर देश के प्राथमिक और जूनियर हायर सेकंडरी स्कूलों में बच्चों के मोबाइल फोन के इस्तेमाल पर पाबंदी लगा दी थी। इसके बाद दुनियाभर में इस पर बहस शुरू हो गई। कई लोग स्कूल में मोबाइल के फायदे गिना रहे हैं, जबकि फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनुअल मैक्रों ने विभिन्न सर्वेक्षण रिपोर्ट को आधार बना कर स्कूल में बच्चों के सेलफोन के इस्तेमाल पर पाबंदी का बिल खुद पेश किया और सांसदों से इसके लिए समर्थन मांगा था। फ्रांस जैसे विकसित देश के इस कदम से भारत में भी कुछ लोग ऐसी पाबंदी के कानून की बात कर रहे हैं, क्योंकि यहां स्कूलों में मोबाइल फोन के दुरुपयोग के मामले बढ़ते जा रहे हैं। स्कूली बच्चों के यौन शोषण से तैयार अश्लील वीडियो क्लिप से इंटरनेट संसार भरा पड़ा है।

असल में कम उम्र के बच्चे क्लास में फोन लेकर बोर्ड और पुस्तकों के स्थान पर मोबाइल पर ज्यादा ध्यान देते हैं। वे एक-दूसरे को संदेश भेज कर बातें करते हैं या फेसबुक, इंस्टाग्राम जैसे सोशल मीडिया पर सक्रिय रहते हैं। इससे उनके सीखने और याद रखने की गति तो प्रभावित हो ही रही है, स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ रहा है। अब वे खेल के मैदान में पसीना बहाने के बजाय आभासी दुनिया में व्यस्त रहते हैं। इससे उनमें मोटापा, आलस्य, आंखें कमजोर होना, याददाश्त कमजोर होने जैसे भी प्रभाव दिखने लगे हैं। पहले बच्चे गिनती, पहाड़े, स्पेलिंग या तथ्य को अपनी स्मृति में रखते थे, लेकिन अब वे हर काम के लिए सर्च इंजन का उपयोग कर लेते हैं। इसलिए भारत में कम से कम आठवीं कक्षा तक मोबाइल प्रतिबंधित करने की बात उठती रही है। डिजिटल लत की वजह से लोग अपनी वास्तविक समस्याओं से कट रहे हैं, मौलिक चिंतन और मौलिक सोच कम हो रही है, साथ ही लोगों का सामाजिक दायरा भी कम हो रहा है। भारत में भी बंगलुरु, दिल्ली सहित कई शहरों में ऐसे केंद्र खोले जा रहे हैं। इन केंद्रों पर जिंदगी को ऑफलाइन बनाने पर काम किया जाता है। इंटरनेट की लत एक ऐसी मनोस्थिति है, जब लोग घंटों ऑनलाइन गेम, नेट सर्फिंग या सोशल साइटों पर समय बिताने लगते हैं और इंटरनेट नहीं मिलने पर बेचैन या अवसाद से ग्रस्त हो जाते हैं।

असल में युवा वर्ग सूचनाओं के बोझ से दबा जा रहा है और उसके खुद के सोचने और समझने की क्षमता लगातार कम होती जा रही है, साथ ही काम में मौलिकता अभाव स्पष्ट रूप से दिख रहा है। मशहूर लेखक निकोलस कार ने मानव मन-मस्तिष्क पर इंटरनेट के प्रभाव विषय पर अपनी चर्चित पुस्तक ह्यद शैलोजह्न में कहा है, 'इंटरनेट हमें सनकी बनाता है, तनावग्रस्त करता है, हमें उस ओर ले जाता है जहां हम इस पर ही निर्भर हो जाएं।' भारत दुनिया के सबसे

ज्यादा बेरोजगारों का देश बन गया है।

बेरोजगारी के इन भयावह आंकड़ों के बावजूद युवाओं में बड़े पैमाने पर बेचैनी नहीं दिखती तो इसकी एक वजह सोशल मीडिया और डिजिटल लत भी है। यह ठीक वैसे ही है जैसे शरीर के किसी हिस्से में दर्द होने पर दर्द का जड़ से इलाज करने के बजाय फौरी राहत के तौर पर दर्द की दवा या इंजेक्शन देकर मरीज को रहत दी जाए। लेकिन सच्चाई है कि यह राहत भी अस्थायी है और जैसे ही कुछ घंटों में दवा का असर कम होगा फिर से मूल समस्या उभर आएगी। आज युवाओं को एक सोची-समझी रणनीति के तहत बुनियादी चिंताओं और समस्याओं से दूर किया जा रहा है या कहें कि उन्हें वास्तविक समस्यायों का एहसास भी होने नहीं दिया जा रहा है।

डिजिटल लत की वजह से एक पीढ़ी के रूप में भी हम अपने जीवन पर से नियंत्रण खो रहे हैं। भारत में बेहद सस्ती दरों पर उपलब्ध डाटा की वजह से कम आय वर्ग वाले लोगों के पास भी स्मार्टफोन उपलब्ध है, जिसका सदुपयोग होने के बजाय दुरुपयोग ज्यादा हो रहा है। एक सर्वे के अनुसार करीब बानवे प्रतिशत गरीब किशोर इंटरनेट का प्रयोग कर रहे हैं और पैंसठ फीसद के पास स्मार्टफोन है। वहीं, अच्छी कमाई वाले घरों के सनतानवे प्रतिशत बच्चे इंटरनेट का इस्तेमाल कर रहे हैं और उनहत्तर फीसद के पास स्मार्टफोन है। कई बार ऐसी लत के शिकार लोगों को पता भी नहीं चलता कि वे कब और कैसे इसकी गिरफ्त में आ गए।

बिना मोबाइल या फोन के एक पूरा दिन बिताने की कल्पना अब बहुत मुश्किल लगती है, कुछ के लिए तो शायद असंभव! लेकिन हाल में ही पोलैंडवासियों ने 'डे विदआउट सेलफोन' अभियान के तहत पूरा दिन बिना मोबाइल के बिताया। वहां लोगों को वास्तविक दुनिया से परिचित कराने और फोन पर संदेशों के आदान-प्रदान की जगह आमने-सामने बैठ कर रिश्तेदारों व दोस्तों से बात करने का मौका देने के लिए यह अभियान चलाया गया। इसमें पोलैंडवासी खूब रुचि दिखा रहे हैं। असल में पोलैंड के ज्यादातर नौजवान कक्षाओं के साथ-साथ खाना खाते और सिनेमा देखते वक्त भी फोन का इस्तेमाल करते हैं। इस वजह से देश में फोनोलिज्म यानी फोन की लत की बीमारी में इजाफा हुआ है, ऐसे में इस तरह के अभियान की पहल की गई।

आज सबसे ज्यादा चिंताजनक बात यह है कि युवाओं के अलावा कम उम्र के बच्चे भी अब डिजिटल लत के शिकार हो रहें हैं। वैसे तो साइबर लत की समस्या पूरी दुनिया में फैली हुई है, लेकिन दुनिया में युवाओं की सबसे बड़ी आबादी वाले भारत जैसे विकासशील देश के लिए यह समस्या ज्यादा गंभीर है। अब समय आ गया है जब इसका समाधान तलाशा जाए नहीं तो यही मानव संसाधन सबसे ज्यादा दिग्भ्रमित होगा। कुल मिला कर साइबर लत से छुटकारा पाने के लिए सरकार के साथ-साथ सामाजिक और पारिवारिक स्तर पर पहल करनी होगी और यह प्रण लेना होगा कि छोटे बच्चों को घर और स्कूल में मोबाइल फोन से दूर रखा जाए। भारत में भी 'डे विदआउट सेलफोन' जैसे अभियान चलाने की जरूरत है।

उम्मीदों के समांतर

अतुल चतुर्वेदी

हमारा देश नित नूतन सवालों का देश है। लेकिन कुछ सवाल शाश्वत हैं जो कभी नहीं बदलते या हम उन्हें गंभीरता से बदलना ही नहीं चाहते। हम इसे यों भी कह सकते हैं कि सवालों से जूझना हमारा चिरंतन शौक है। लड़कियों की आजादी और पोशाक पर सवाल खड़े करना हमारी सनातनी सभ्यता का जहां सामान्य माना जाने वाला हिस्सा है, वहीं बेरोजगारी के सवाल पर हम ठगे से खड़े रह जाते हैं। खुद कामचोरी करके भ्रष्टाचार को आजकल का शिष्टाचार बता कर दूसरों के भ्रष्टाचार को कोसना हमारा शगल बन चुका है। किसानों के पक्ष में कई योजनाएं बनने और घड़ों आंसू बहाने के बाद आज भी किसान क्यों आत्महत्या कर रहे हैं, इसका जवाब न हमारे पास है और न हमारे किसान चिंतक रहनुमाओं के पास।

सवाल यह भी है कि जब हम दूसरों के आचरण और नीयत पर इतने सवाल खड़े करते हैं तो अपने खिलाफ सवाल किए जाने पर बौखला क्यों जाते हैं? कोई विरोधी तो दूर, हमारा मित्र भी मित्रवत भाषा में अगर हमारी किसी कमी की ओर इशारा कर देता है तो हमारा जनतांत्रिक चेहरा एकदम से पता नहीं कहां बिला जाता है! दूसरों की मां-बेटी पर व्यंग्यमय सवाल खड़े करते समय हमें अपने घर की बेटियों और महिलाओं के मासूम चेहरे क्यों याद नहीं आते हैं?

महिलाओं को लेकर हजार-हजार कुंठाएं पालने या उसे फैलाने में तो मानो हमारा कोई मुकाबला ही नहीं! दहेज विरोधी आंदोलन में बढ़-चढ़ कर नारे लगाने के बाद अपने बेटे के लिए बाकायदा लिस्ट बना कर दहेज मांगते समय हमारी जुबान क्यों नहीं लड़खड़ाती है? सवाल-दर-सवाल हमारी फितरत है। इस तरह के तमाम सवालों की फेहरिस्त बहुत लंबी है और व्यक्ति की रुचियों के हिसाब से तैयार है। लेकिन अफसोस यह है कि सवालों के जंगल खड़े हुए हैं, मगर उनके उत्तर जैसे गूंगे हो चुके हैं। सवालों के जवाब कभी मिलेंगे भी या नहीं यह कहना भी अभी मुश्किल है।

दुनिया मेरे आगे

क्रिकेट के प्रेमी अब मैदान से ज्यादा ड्रेसिंग रूम और खिलाड़ियों की निजी जिंदगी में ज्यादा ताक-झांक करने लगे हैं। पता नहीं, मैदान में उनका खेल अहम है या उनकी निजी जिंदगी ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गई है! इसके अलावा, हमारा मीडिया और खासतौर पर टीवी मीडिया भी रोचक और सनसनीखेज की खोज में अपना युगधर्म भूल गया लगता है। विडंबना यह है कि जो सब पर सवाल खड़े करने की कूवत रखता है, खुद सवालों की बौछार को पल भर भी झेल नहीं पाता। राजनीति के अखाड़ेबाजों के लिए तो सवाल हमेशा ही मुंह बाए खड़े रहते हैं। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक सवालों की फसल खड़ी है, लेकिन हमारे नेता भी कम नहीं हैं। वे सवाल एक-दूसरे पर उछालते जा रहे हैं, लेकिन खुद पर उठे तीखे सवालों को भी नजरअंदाज कर जाते हैं या फिर उनकी दिशा बदल देते हैं। बेचारे सवाल करने वाले और जवाब की उम्मीद में बैठे दर्शक जवाब के इंतजार में आंखें बिछाए रह जाते हैं!

सवाल यह भी है कि क्या सत्तर साल की उम्र के बाद हम अब भी बचकाने बने रहेंगे और आने वाली उम्र की दहलीज पर अलग-अलग तरह की अनेक फूहड़ताओं और बेशर्मी के साथ कदम रखेंगे? गली-मोहल्ले में होने वाले बेलगाम झगड़ालू शोर से लेकर संसद तक में हालात देख कर तो ऐसा ही लगता है। क्या शिक्षा और चिकित्सा जैसे पवित्र पेशे में हमारा रवैया सेवा की जगह ऐसे ही पेशेवराना बना रहेगा? रोजगार के लिए लाचार हमारे युवा किस दिशा में अपने लिए ठौर की उम्मीद करेंगे? क्या हम समाज के ज्यादातर लोगों को शिक्षा और बीमारियों के इलाज के लिए अस्पतालों के दरवाजे से वापस लौटाने की व्यवस्था तैयार कर रहे हैं? स्त्रियों के प्रति क्या ऐसे ही मध्ययुगीन सोच के साथ हम विकसित देशों की कतार में खड़े होने का दावा कर सकते हैं, अपने मौजूदा दागदार चेहरे के साथ? क्या हमारे साहित्यकार इसी तरह जन के गंभीर मुद्दों से मुंह चुरा कर पुरस्कारधर्मी लेखन में दत्त और चित्त रहेंगे? क्या पाठकों के अभाव को रोते-रोते वे कभी अपनी लेखनी के वैचारिक बंजरपन को भी रोएंगे?

सवाल बहुत हैं। हर सवाल के पीछे सवाल खड़े हैं और अपनी बाट जोह रहे हैं। बस नहीं हैं तो उनके माकूल उत्तर। लगता है, संतोषजनक उत्तर देने की या तो हमारी काबिलियत ही नहीं रही या हम अपने समय के प्रश्नों से मुंह चुराना चाहते हैं। हम नए साल में प्रवेश तो कर चुके हैं, लेकिन क्या इस नए साल में पुराने टोटकों से मन बहलाएंगे या कुछ नए हल भी खोजेंगे? लेकिन अगर हम नए साल में भी सवालों के सही जवाब ढूंढ़ने के बजाय उसी तरह जुमले उछाल कर लोगों को रिझाने का खेल करते रहे तो फिर नएपन का सौंधा अहसास क्या होगा और उम्मीदों की नई कोंपले कैसे फूटेंगी?

नए वर्ष में

बीते वर्ष में हम सभी के जीवन में कुछ खट्टी तो कुछ मीठी गतिविधियां अवश्य हुई होंगी। बीते वर्ष में हमें अगर सैकड़ों खुशियां मिली हैं तो थोड़े-बहुत गमों का सामना भी सभी ने किया है। अब जब हम नए वर्ष में प्रवेश कर चुके हैं तो यह सोचना नितांत आवश्यक है कि इस वर्ष के 365 दिन हम क्या, कैसे और कब करेंगे। कहने को तो ये सिर्फ 365 दिन हैं लेकिन यदि बात घंटों में करें तो ये 8,760 घंटे हैं। यदि और गहराई में जाएं तो ये 5,25,600 मिनट और 31,536,000 सेकंड हैं। हमें इस नए वर्ष में कुछ ऐसे कार्य करने चाहिए जिनसे हमारे मन को संतुष्टि हो। हम अपनी जिंदगी में प्रतिदिन सैकड़ों कार्य करते हैं लेकिन क्या उन सभी कार्यों से खुश हो पाते हैं यह सोचने का विषय है। कई कार्य तो ऐसे होते हैं जो न चाहते हुए भी बेमन से करने पड़ते हैं या कई अनजाने में हमसे हो जाते हैं।

इस वर्ष हम अपने उन सैकड़ों कार्यों में से कुछ कार्य ऐसे अवश्य करें जिनसे समाज स्वच्छ, स्वस्थ व जागरूक अवश्य हो। जैसा कि कहावत भी है, बूंद-बूंद से सागर भरता है तो इसी प्रकार सिर्फ एक व्यक्ति के जागरूक होने से बात नहीं बनने वाली लेकिन उस एक व्यक्ति की पहल से संपूर्ण समाज जागरूकता लाने के कार्यक्रम से जुड़ अवश्य सकता है। हमारा वर्तमान परिदृश्य कई समस्याओं की चपेट में है जिनमें अशिक्षा, गंदगी, असमानता आदि प्रमुख हैं। हम सभी को चाहिए कि वर्ष 2019 में संकल्प लें कि अपने साथ-साथ अपने समाज को शिक्षित, स्वस्थ व जागरूक करने का कार्य अवश्य करेंगे। इन दिनों 'फेक न्यूज' (फर्जी खबरें) काफी चर्चित हैं और हमें अपने समाज में इनके प्रति भी जागरूकता लाने की आवश्यकता है क्योंकि इनकी वजह से कई प्रकार के विवाद उत्पन्न होते हैं। फेक न्यूज के प्रति जागरूकता लाने से काफी हद तक इनसे होने वाले दंगे-फसाद पर लगाम लग सकेगी। विभिन्न माध्यमों से चाहे वह प्रिंट मीडिया हो, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हो या फिर सोशल मीडिया, लोगों को फेक न्यूज क्या होती है इसके क्या नुकसान होते हैं इस बाबत जागरूक करना होगा। कुल मिलाकर हमें नए वर्ष में ऐसा कुछ करना है कि जब 2019 के अंतिम दिन इस बात पर विचार करें कि हमने बीते 364 दिन क्या किया तो स्वयं पर गर्व महसूस हो।

● *अमन सिंह, प्रेमनगर, बरेली, उत्तर प्रदेश*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

जुर्म और दंड

कुछ कट्टरपंथी मजहबी रहनुमाओं का कहना है कि तीन तलाक कानून शरीयत में हस्तक्षेप है, इसे मंजूर नहीं किया जा सकता। क्या ये लोग नहीं जानते कि भारत में शरीयत को अंग्रेजों ने 1772 से बदलना शुरू कर दिया था, जब काजी की जगह जजों द्वारा फैसले दिए जाने शुरू हुए। 1843 में गुलाम रखने की इस्लामी प्रथा समाप्त की गई। 1860 में इस्लामी दंड विधान खत्म करके आईपीसी और 1861 में सीआरपीसी अस्तित्व में आए। यानी चोरी के जुर्म में हाथ काटने या व्यभिचार के अपराध में कोड़े व पत्थर से मारने के इस्लामी दंड समाप्त किए गए। उनके स्थान पर कारावास की सजा आई। सन 1872 में साक्षी अधिनियम बना। एक पुरुष की गवाही दो स्त्रियों के बराबर मानने का शरीय कानून खत्म करके समानता लाई गई। 1882 में संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम लागू हुआ।

इन तमाम व्यवस्थाओं ने शरीयत को लगभग तीन-चौथाई बदल डाला है। केवल विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, गोद लेने जैसे निजी कानून अपरिवर्तित हैं। इनमें से तलाक से जुड़ा 'तुरंत तीन तलाक' कहीं कुरान में नहीं लिखा हुआ। शिया लोग तो इसे मानते ही नहीं। सुन्नियों में भी कुछ तबके इसे अनुचित समझते हैं। क्या ये मुसलमान नहीं हैं? महिलाओं के हित में तीन तलाक का जाना जरूरी है। कुछ लोग तर्क देते हैं कि खाविंद को तीन तलाक के लिए तीन साल की जेल गलत है। वे बताएं कि बगैर ऐसे निवारक उपाय के मर्द की स्वेच्छाचारिता पर लगाम कैसे लगेगी? यदि कोई हिंदू दूसरी शादी कर लेता है, तो क्या उसे जेल नहीं जाना पड़ता?

● *आस्था गर्ग, बागपत रोड, मेरठ*

विकास से वंचित

नीति आयोग ने देश के पिछड़े जिलों की ताजा रैंकिंग जारी की है। इस रैंकिंग के अनुसार तमिलनाडु के विरुदनगर, ओड़ीशा के नौपदा और उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थ नगर ने विकास के मामले में संतोषजनक प्रदर्शन किया है। यह निराशाजनक है कि कुछ राज्य पिछड़े जिलों को विकसित करने की योजना का लाभ उठाने के मामले में तत्पर नहीं दिख रहे हैं। आज जब संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य पूरे करने की चुनौती है तब यह अनिवार्य है कि देश के विकास से वंचित इलाकों को विकसित करने की मुहिम शुरू की जाए। इस मामले में उत्तर भारत का प्रदर्शन निराशाजनक है। अपने देश की एक बड़ी समस्या यह है कि राजनीतिक दलों के हर तरह के व्यवहार को राजनीति कह दिया जाता है चाहे वह कितना ही जनविरोधी क्यों न हो? इससे राजनीति और कुराजनीति का भेद ही खत्म होता है।

● *चांद मोहम्मद, आंबेडकर कॉलेज, दिल्ली*

हार की खीझ

भारतीय राजनीति का असर अब पड़ोसी देशों पर भी पड़ने लगा है, खासकर विपक्ष की। हमारे पड़ोसी देश बांग्लादेश में हाल ही में संपन्न हुए चुनावों में वहां की जनता ने प्रधानमंत्री शेख हसीना को तीसरी बार प्रचंड बहुमत के साथ सत्ता में बिठाया है। जहां 298 सीटों वाली बांग्लादेशी संसद में सत्ता पक्ष को 287 सीटें मिलीं वहीं विपक्ष को कुल सात सीटें। अब वहां विपक्ष अपनी हार को सहजता से स्वीकार करने के बजाय सरकार पर आरोप लगा रहा है कि उसने चुनाव आयोग की मदद से हेराफेरी की है।

भारत में भी जब विपक्षी दल हार जाते हैं तो कहते हैं कि इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) के साथ छेड़छाड़ हुई है, चाहे पहले वे खुद उसी ईवीएम से मिले वोटों से सत्ता सुख भोग कर आए हों। वे चुनाव आयोग के खिलाफ मुखर होने में नहीं कतराते लेकिन जब दुबारा किसी राज्य में ईवीएम से जीत जाते हैं तो उन्हें कोई गुरेज नहीं होता और कहते हैं कि जनता हमारे साथ थी! इसी तरह का दोगला रवैया अब बांग्लादेश भी पहुंच गया है। राजनीतिक दलों को ऐसी स्थिति में आत्ममंथन कर हार के कारणों की तलाश करनी चाहिए। इससे उन्हें भविष्य में ज्यादा फायदा होगा।

● *मनीष पांडेय, दिलशाद गार्डन, दिल्ली*